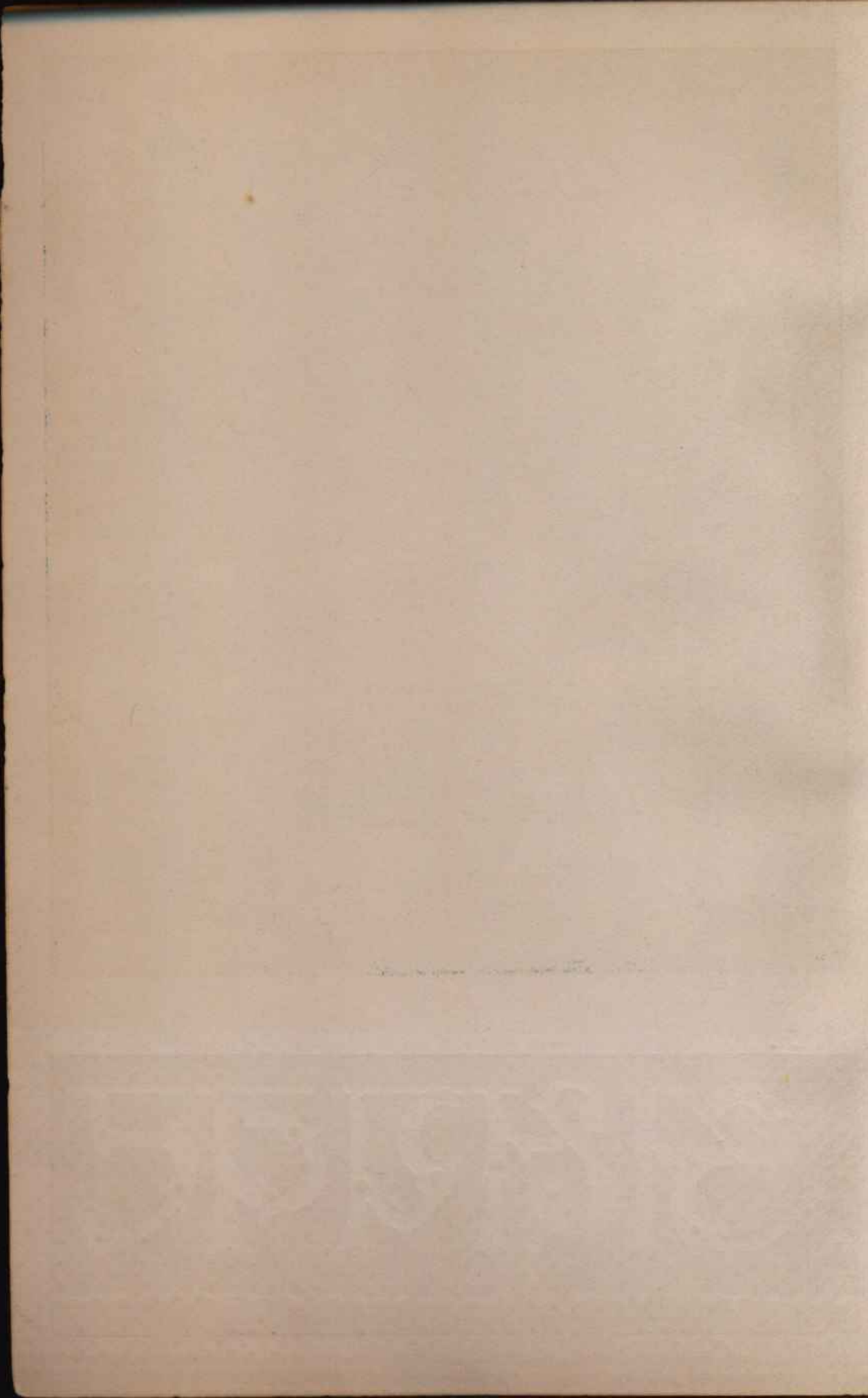
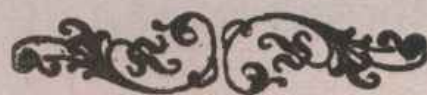




अक्षयवर्



अक्षय-वट



लेखक

श्री शीतलाप्रसाद मिश्र

सम्पादक

श्री रमादत्त शुक्ल



प्रकाशक

पं. देवीदत्त शुक्ल स्मारक

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

प्रयाग-६



प्रकाशक :

कल्याण मन्दिर प्रकाशन

(धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशक-विक्रेता)

अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग २११००६-(उ. प्र.)

सर्वाधिकार सुरक्षित

‘अक्षय तृतीया’ सम्बत् २०४६ विक्रमो

५ मई, १९६२

द्वितीय संस्करण

मूल्य : ~~२००~~ रु०

मुद्रक :

परा-वाणी प्रेस

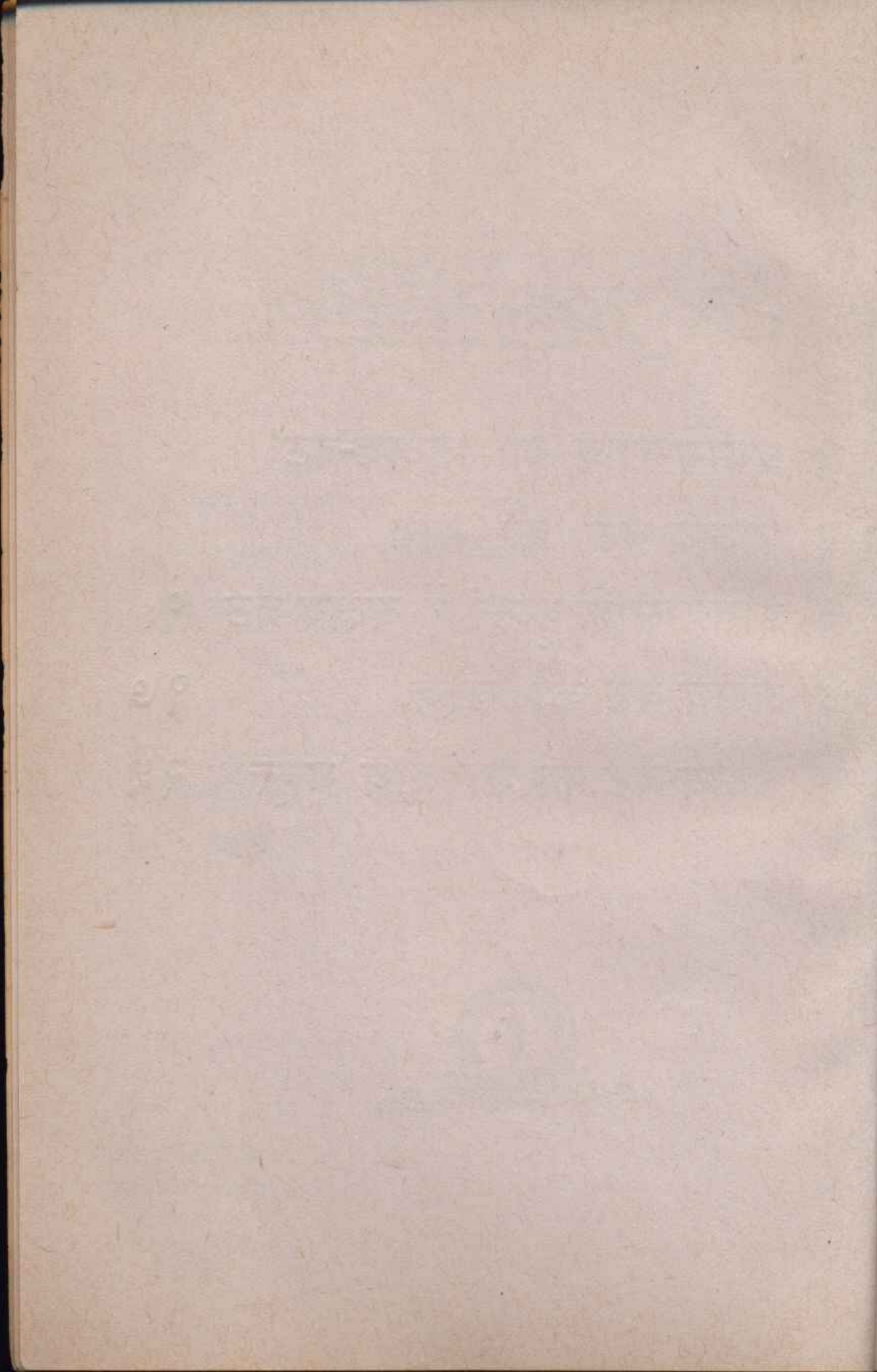
अलोपीबाग मार्ग,

प्रयाग २११००६-(उ. प्र.)

अनुक्रमणिका

- १ प्रयाग-राज का 'अक्षय-वट'
- २ 'अक्षय-वट' की माँग
- ३ इतिहास के पृष्ठों में अक्षय-वट १
- ४ अक्षय-वट की खोज १७
- ५ अक्षय-वट का शास्त्रीय महत्त्व २५





प्रयाग-राज का 'अक्षय-वट'

धर्म-शील हिन्दुओं को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि तीर्थ-राज प्रयाग का पवित्रतम 'अक्षय-वट' जैसा कि उसका नाम है, पुरवत् अपने स्थान में जीवित हरा-भरा खड़ा है। लोगों की जो यह धारणा थी कि मुगल-शाही के समय में हिन्दुओं का पवित्रतम 'वट-वृक्ष' किले की सीमा के भीतर आ जाने के कारण काट डाला गया था, सर्वथा निराधार है। 'अक्षय-वट' या उसका अश-विशेष अपने स्थान पर ज्यों-का-त्यों विद्यमान है।

इस खोज का पूर्ण श्रेय न्याय-मूर्ति पं० शिवनाथ काटजू तथा किले के कुछ धर्म-शील अधिकारियों को है, जिन्होंने 'अक्षय-वट' को खोज निकालने में बड़ी तत्परता और सावधानी से काम किया।

पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ को जब भारत स्वतन्त्र हुआ था, तब स्थानीय 'अमृत-बाजार पत्रिका' में यह खबर छपी थी कि किले का 'असली अक्षय-वट' हिन्दू-जनता के दर्शनार्थ खोल दिया गया है। इस खबर को पाकर हजारों नगर-निवासी 'अक्षय-वट' का दर्शन करने के लिए किले में दौड़े गए, परन्तु वहाँ केवल उसके प्रतीक के ही दर्शन मिले।

इस पर 'चण्डी' वर्ष १० सन् १९५१ में लिखा गया कि 'अक्षय-वट' किले के अन्दर विद्यमान है और उसकी खोज होनी चाहिए। उसकी खोज का प्रस्ताव 'हिन्दू-धर्म' के अभि-

(पाँच)

छ: : अक्षय-वट

मानियों के सम्मुख पहले पहल 'चण्डी' पत्रिका द्वारा उपस्थित किया गया था ।

'चण्डी' पत्रिका के उक्त प्रस्ताव की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । ध्यान गया केवल श्रीमान् काटजू साहब का, जिन्होंने 'अक्षय-वट' की बात को लेकर 'प्रयाग-तीर्थ' के सम्बन्ध में एक खोज-पूर्ण लेख 'लीडर' में छपवाया । साथ ही 'अक्षय-वट' के प्रन्वेषण में चुपचाप लगे रहे । उनका परिश्रम सफल हुआ और उन्होंने सम्बत् २००७ 'वि०-आषाढ़ शुक्ला एकादशी' के दिन, अपने मित्र किले के अधिकारियों के साथ जाकर कोई साढ़े चार सौ वर्ष बाद हमारे परमाराध्य 'अक्षय-वट' का पूजन किया और उपस्थित सज्जनों में प्रसाद बाँटा ।

श्रीमान् काटजू साहब के अनु-सन्धान में 'अक्षय-वट' के सम्बन्ध में जो प्रमाण मिले, उनसे यह बात भली-भाँति सिद्ध हो जाती है कि हमारा असली 'वट-वृक्ष' यही है, जो अनेक कारणों से पिछले कई सौ वर्ष से हमें यजन-पूजन के लिए नहीं मिल सका ।

अब जब हम स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं, हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी सरकार से इस सम्बन्ध में आवेदन-निवेदन करें, जिससे हमें हमारा 'अक्षय - वट' यजन - पूजन के लिए मिल जाए ।

❧ रमादत्त शुक्ल

अक्षय तृतीया, २०४६ वि०

५ मई, १९६२



अक्षय-वट की माँग

इतिहास-ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि जिस स्थान पर आज किला बना हुआ है, वहाँ पहले एक विशाल 'वट-वृक्ष' था तथा बहु-संख्यक छोटे-बड़े 'देव-मन्दिर' और तीर्थ-पुरोहितों की एक बस्ती भी थी और सारे देश में उक्त 'वट-वृक्ष' बड़े आदर से देखा जाता था ।

इतिहास-ग्रन्थों के अनुसार यह पुण्य-तम स्थान, ११ वीं सदी से १६ वीं सदी के अर्द्ध भाग से भी अधिक समय तक ज्यों-का-त्यों अस्तित्व में रहा और हिन्दू इसे बड़े आदर-मान के साथ पूजते रहे ।

बादशाह अकबर ने इसी पवित्र स्थान में अपना 'किला' बनवाया, जो आज भी है । जब से यहाँ किला बना, यहाँ की सारी बस्ती तथा छोटे-बड़े सभी मन्दिर एवं पूज्य-तम विशाल 'वट-वृक्ष' का पूर्ण रूप से लोप हो गया । बाद को इस बात का प्रमाण मिलता है कि उस किले के विशाल क्षेत्र के भीतर, एक छोटी-सी जगह में हिन्दुओं को 'अक्षय-वट' तथा वहाँ पर रखी हुई देव-मूर्तियों की पूजा करने की सुविधा प्राप्त थी । वह स्थान कदाचित् तभी से 'पाताल-पुरी' नाम से प्रसिद्ध है । यह पूजन की सुविधा कब से प्रारम्भ हुई, इसका कोई पक्का प्रमाण अभी तक प्रकाश में नहीं आया है ।

किंवदन्तियों से प्रकट होता है कि 'पाताल - पुरी' के 'अक्षय-वट' के पूजन की व्यवस्था बादशाह अकबर के समय

(सात)

आठ : अक्षय-वट

से ही है, परन्तु उस स्थान पर जो मूर्तियाँ स्थापित हैं, वे आधुनिक हैं :

पीछे प्रकाशित लेखों का यह थोड़े में सारांश है। अब विचार करना यह है कि इन निष्कर्षों में मान्यता किसे देना चाहिए। यह तो प्रकट ही है कि जो वस्तु 'अक्षय-वट' के नाम से पूजी जाती है, वह एक कल्पित वस्तु है और उसे जो लोग पूजते हैं, उनमें से अधिकांश उसकी असलियत को जानते हैं। वे जानते हैं कि यह असली 'वट-वृक्ष' नहीं है, किन्तु एक सूखी मोटी 'वट-जंघा' है, परन्तु अपनी भावुकता और श्रद्धा के कारण वे उसे 'अक्षय-वट' के नाम से पूजने को बाध्य हैं।

अतः यदि हमें 'हिन्दू-धर्म' और हिन्दुओं के साथ न्याय करना है, तो हमको ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि यह क्षेत्र हिन्दुओं को प्राप्त हो। 'शास्त्र' भी इसी मत को पुष्ट करेगा।

'धर्म' में मखौलवाली बात अच्छी नहीं होती और न ही मिथ्या विश्वासों को दृढ़ता प्रदान करना श्रेयस्कर है। मुख्य बात इतनी ही है कि 'प्रयाग' के किले के क्षेत्र में जहाँ पहले 'अक्षय-वट' था, अब एक वृक्ष मौजूद है, जो कम पुराना नहीं है। वह हिन्दुओं को 'अक्षय-वट' के रूप में पूजने के लिए मिल जाना चाहिए। हिन्दू-धर्म-भावना की यह माँग 'धर्म-युक्त' है और इसकी पूर्ति करना हमारी सरकार का एक आवश्यक कार्य है।

अक्षय-तृतीया, २०४६ वि०

—प्रकाशक

५ मई, १९६२



इतिहास के पृष्ठों में अक्षय-वट

हिन्दुओं के विश्वास और उनके धर्म - ग्रन्थों के अनुसार 'अक्षय-वट' अजर-अमर है। पौराणिक आख्यानों में वट-दशन की कथाएँ मिलती हैं। 'वामन-पुराण' के अनुसार भक्त - राज प्रह्लाद ने भी 'अक्षय - वट' का दर्शन किया था। 'वाल्मीकि-रामायण' में भरद्वाज जी ने भगवान् श्री रामचन्द्र जी से 'अक्षय-वट' का वर्णन करते हुए अनुरोध किया है कि सीता जी उस 'वट' की पूजा करें। वहीं आगे सीता जी द्वारा 'वट-पूजन' का भी वर्णन मिलता है। बहुत से यात्रियों तथा इतिहास-कारों ने 'अक्षय-वट' का उल्लेख अपने यात्रा-विवरणों तथा ग्रन्थों में किया है।

ह्वेनसांग द्वारा किया गया प्रयाग का वर्णन अत्यन्त मनोरञ्जक है। ह्वेनसांग, महाराज हर्षवर्धन के साथ ६४३ ई० में प्रयाग आए थे। ह्वेनसांग ने प्रयाग - क्षेत्र में हिन्दुओं के सौ मन्दिर तथा बौद्धों के भी कुछ मन्दिर देखे थे। उन्होंने लिखा है कि—

“प्रयाग का क्षेत्र-फल २० लि० के लगभग है और वह दो नदियों के सङ्गम पर स्थित है (५ लि० लगभग एक मील के बराबर होता है)। राज-धानी (प्रयाग) में पूजित देव - मन्दिर के समीप बहुत दूर तक फैला हुआ एक बड़ा वृक्ष है। मन्दिर के दर्शनार्थी कु-प्रभाव तथा अन्ध-विश्वास में पड़ कर प्राचीन

समय से वहाँ आत्म-हत्या करते आए हैं। नदियों के सङ्गम पर मन्दिर के पूर्व की ओर लगभग १० लि० का मैदान सफेद बालू से ढँका हुआ है। इसे लोग विशाल दान-भूमि के नाम से पुकारते हैं। यही वह स्थल है, जहाँ प्राचीन-काल से राजा, महा-राजा तथा दानी पुरुष आकर दान किया करते हैं।”

इससे यह स्पष्ट होता है कि ‘अक्षय-वट’ दोनों नदियों के सङ्गम के समीप किसी मन्दिर के पार्श्व में था। बालू का मैदान, जैसा कि चीनी यात्री ने वर्णन किया है, आज भी उसी अपरिवर्तित रूप में दिखलाई पड़ता है। किले के ऊपर से पूर्व की ओर देखने से बालू की तलहटी, जिसे दोनों नदियाँ जाड़े तथा गर्मी में छोड़ जाती हैं तथा जो ‘कुम्भ’ और ‘माघ - मेले’ का स्थल बन जाती है, स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। चीनी यात्री द्वारा वर्णित देव-मन्दिर शूलटङ्केश्वर महा-देव का मन्दिर रहा होगा।

प्रसिद्ध मुस्लिम यात्री अलबरूनी ने, जो महमूद गजनवी के साथ १०१७ ई० में भारत आए थे, इसे ‘प्रयाग का वृक्ष’ कहा है तथा यह वही वृक्ष प्रतीत होता है, जिसका ह्वेनसांग ने वर्णन किया है। अलबरूनी के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय ‘प्रयाग का वट-वृक्ष’ इतना प्रसिद्ध था कि उससे स्थानों की दूरी की गणना की जाती थी। अलबरूनी ने गणना के मील पत्थरों की भाँति इस वृक्ष का वर्णन किया है अर्थात् उन्होंने ब्रह्म - शिला (वर्तमान फतेहपुर तथा प्रयाग के बीच का एक स्थान) से प्रयाग के वृक्ष तथा प्रयाग के वृक्ष से लेकर वाराणसी (बनारस) तक का फासला दिया है। अलबरूनी ने लिखा है—

“यमुना-गङ्गा के सङ्गम पर, जिसे ‘प्रयाग’ कहते हैं, एक बड़ा वृक्ष है, जो एक ‘वट-वृक्ष’ है। इसकी विचित्रता यह है कि इसकी शाखाओं से बहुत-सी और शाखाएँ फूटकर अन्य वृक्षों की भाँति ऊपर की ओर बढ़ती हैं तथा पत्तियों के बिना नीचे की ओर जाती हैं। ये जब भूमि में घुस जाती हैं, तो पेड़ को सहारा देती हैं। प्रकृति ने ऐसा इसलिए किया है कि इसकी शाखाएँ दूर तक फैली हैं और उन्हें आश्रय की आवश्यकता है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय इस वृक्ष पर चढ़कर गङ्गा में कूदकर आत्म-हत्या करते हैं।”

अलबरूनी स्वयं मुलतान के आगे नहीं बढ़ सके थे। प्रयाग के वृक्ष का वर्णन उन्होंने महमूद गजनवी के सैनिक तथा मुल्की अधिकारियों से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार किया होगा।

वृक्ष पर से गङ्गा में कूदने का वर्णन उन्होंने शिथिल ढङ्ग से किया है और यमुना जी के स्थान पर प्रसिद्धि अथवा भूल के कारण ‘गङ्गा’ लिख गए हैं। अन्यथा ऐसा हो सकता है कि वृक्ष सङ्गम के कोने में रहा हो और उसकी शाखाएँ दोनों नदियों के ऊपर फैली रही हों तथा लोग गङ्गा में कूदते रहे हों। कदाचित् किले के निर्माण के पहले गङ्गा की धारा पश्चिम की ओर यमुना से मिलने तक उतनी सीधी पंक्ति में न रही होगी, जैसी कि अब किले के निर्माण से हो गई है। इससे यह कल्पना की जा सकती है कि किले के निर्माण के पूर्व वृक्ष के नीचे ही दोनों नदियों का सङ्गम रहा होगा।

सन् १३१० ई० में लिखित ‘जामुन तवारीख’ के लेखक रशीदउद्दीन (मुस्लिम इतिहास-कार) ने यमुना-गङ्गा के सङ्गम

पर 'प्रयाग' के इस वृक्ष का वर्णन किया है। जान डासन द्वारा सम्पादित 'इलिएट्स हिस्ट्री आफ इण्डिया' में 'जामुन तवारीख' सम्मिलित है। जान डासन सैण्डहर्स्ट स्टॉफ कालेज में उच्च सैनिक अधिकारी थे। डासन ने रशीदउद्दीन के वर्णन के आधार पर प्रयाग के वृक्ष के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

“वृक्ष का वर्णन इसलिए आवश्यक है कि इलाहाबाद के स्थान पर उस समय कोई नगर नहीं था, वरन् सङ्गम पर एक विशाल वृक्ष था, जिसमें दो मुख्य शाखाएँ थीं और भारतीय उस वृक्ष से चढ़कर गङ्गा में कूदते थे। इसलिए प्रतीत होता है कि नदी उससे नीचे बह रही थी। वृक्ष की शाखा अब भी है और उसी प्रकार पवित्र है तथा इलाहाबाद के किले के भीतर पातालपुरी मन्दिर के समीप मन्दिर के घेरे में होने के कारण बाहर से दृष्टि-गोचर नहीं हो पाती है।”

यह आश्चर्य का विषय है कि वृक्ष की शाखा का भेद सन् १८६७ में डासन साहब को ज्ञात नहीं हुआ। शायद वृक्ष की नकली शाखा का सामयिक परिवर्तन उन्हें नहीं बतलाया गया था अथवा ज्ञात होने पर भी उन्होंने इस रहस्य को नहीं खोला, परन्तु वृक्ष की उपस्थिति के कारण इलाहाबाद के स्थान पर नगर न होने का उनका वर्णन वास्तविक नहीं प्रतीत होता है।

अकबर के सम-कालीन अब्दुल कादिर बदायूनी ने प्रयाग के वृक्ष का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है—

“सफर महीने की २३ वीं तारीख को बादशाह ने 'प्रयाग' में, जो इलाहाबाद के नाम से प्रसिद्ध है तथा जहाँ गङ्गा-यमुना मिलती हैं, डेरा डाला। विधर्मों इसे पवित्र स्थान मानते हैं

और इस भावना से कि अगले जन्म में उन्हें सुख - समृद्धि प्राप्त हो, वे यहाँ तरह-तरह की यातनाएँ सहते हैं। कुछ आरे के नीचे अपना सर दे देते हैं। कुछ अपनी जिह्वा को दो भागों में तोड़ देते हैं। कुछ लोग एक वृक्ष की चोटी पर से नदी में कूदकर नरक में पहुँचते हैं। उन्होंने यहाँ एक विशाल भवन का निर्माण किया और शहर का नाम इलाहाबाद रखा।”

इलाहाबाद किले का निर्माण सन् १५७५ ई० में अकबर ने आरम्भ किया।

गोस्वामी तुलसीदास जी के ‘राम-चरित-मानस’ में ‘अक्षय-वट’ का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

देव - दनुज - किन्नर - नर - श्रेणी ।

सादर मज्जहि सकल त्रिवेणी ॥

पूजहि माधव - पद - जल - जाता ।

परसि अछय - वट हरखाहि गाता ॥



सङ्गम सिंहासन सुठि सोहा ।

छत्र अक्षय-वट मुनि - मन मोहा ॥

इससे स्पष्ट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने विशाल ‘अक्षय - वट’ को देखा था अथवा उसके विषय में सुना था।

यह स्पष्ट ज्ञात नहीं कि पातालपुरी-मन्दिर का निर्माण कब हुआ। बादशाह शाह आलम द्वितीय द्वारा हिजरी साल ११७३ (११७२ ई०) में दी गई एक सनद इस प्रकार है—

“इस शुभ-मुहूर्त पर शाही आज्ञा, जिसका पालन किया जाना चाहिए, दी जाती है कि इलाहाबाद सूबे के ‘पाताल-पुरी अक्षय-वट’ के अयोध्यानाथ योगी अपने परिवार के युवा सदस्यों तथा बच्चों (कुछ शब्द फट गए हैं) तथा सम्बन्धी (कुछ शब्द फट गए हैं) बादशाह अकबर द्वारा दिए गए पूर्व सनद के आधार पर निश्चित किया जाता है और ‘अक्षय - वट’ के पुरोहित श्री अयोध्यानाथ योगी की जीविका के लिए पुराने समय से दिया जाता है। मृत्यु के पश्चात् (कुछ शब्द फट गए हैं) किले से संयुक्त ‘अक्षय-वट’ तथा स्थान पर योगी को अधिकार है। उनके बहुत - सी सन्तानें हैं तथा पूर्ण परम्परा को स्थापित रखते हुए एक निरन्तर दान उन्हें उनके सम्बन्धियों और बच्चों को दिया जाता है।

मेरी सन्तानें, वर्तमान तथा भविष्य के मन्त्री, हाकिम तथा दूसरे शासनाधिकारी, जागीरदारों को सदैव इस पवित्र आज्ञा के पालन का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें छोड़ना चाहिए (एक शब्द फट गया है) अपने अधिकार में पीढ़ी-से-पीढ़ी तक कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए, किसी प्रकार की कठिनाई नहीं पैदा करनी चाहिए, किसी प्रकार का कर आदि नहीं लगाना चाहिए और इनसे कुछ माँगना नहीं चाहिए। उन्हें प्रति - वर्ष सनद नहीं देनी चाहिए और न इस आज्ञा का उल्लङ्घन करना चाहिए।” (राज्यारोहण के तेरहवें वर्ष में लिखित)

सनद में अकबर के उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि पाताल-पुरी का प्राचीन मन्दिर अकबर द्वारा निर्मित किले के पश्चात् भी स्थित रहा और मन्दिर के पुरोहित को सरकारी सहायता प्राप्त होती थी। यहाँ कई शिव-लिङ्ग भी थे। कदा-

चित् प्राचीन शूलटङ्केश्वर का मन्दिर भी वहीं रहा हो, जिसके दक्षिण तरफ 'अक्षय-वट' था। ऐसा सम्भव है कि जब वास्तविक 'अक्षय-वट' के स्थान पर कुन्दा स्थापित किया गया, तभी से इसे 'पाताल-पुरी अक्षय-वट' कहा जाने लगा। यह स्पष्ट है कि सन् १७७२ ई० के पूर्व ही से पाताल-पुरी मन्दिर में कुन्दे का पूजन प्रारम्भ हो गया था।

एक डच मिशनरी टिफेन थालर ने, जिन्होंने भारत में कई वर्ष व्यतीत किए हैं, भारत के भूगोल के सम्बन्ध में जर्मन भाषा में एक मनोरञ्जक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक का अनुवाद फ्रांसीसी भाषा में किया गया है। टिफेन थालर पहले इलाहाबाद में फरवरी, १७६५ ई० में आए थे। इसके पश्चात् वे बङ्गाल गए। वहाँ से पुनः सितम्बर, १७६५ ई० में लौट आए। तत्पश्चात् १७६६ ई० में वे पुनः अवध लौट गए। उन्होंने 'पाताल-पुरी-मन्दिर' का वर्णन इस प्रकार किया है—

“दुर्ग के भीतर दक्षिण - पूर्व की ओर पत्थरों से बनी हुई एक कन्दरा है। इस कन्दरा के पतले तथा अँधेरे मार्ग से जाने के लिए प्रकाश आवश्यक है। दीवारें पत्थरों की बनी हुई हैं और दीवार के पत्थरों को काटकर राम, गणेश, पार्वती आदि देवताओं की मूर्तियाँ रखी हुई हैं। महादेव का अश्लील चित्र भी तीन या चार स्थानों में रखा हुआ है। इसी कन्दरा के एक चौकोर पत्थर में महादेव के पैरों के चिह्न भी दिखलाई पड़ते हैं।

इन मूर्तियों की अपेक्षा वे एक वृक्ष के प्रति, जिसे हिन्दु-स्तानी में 'वट' कहते हैं, अधिक सम्मान प्रकट करते हैं। यह कन्दरा में स्वयं विकसित होता है तथा सर्वदा हरा रहता है।

इसकी शाखाएँ दो समान भागों में विभक्त हैं। इसमें पत्तियाँ नहीं हैं, फिर भी इसमें रस है और यदि चाकू से काटा जाता है, तो इसमें से एक प्रकार का दूध निकलता है। हिन्दू अपने इस पवित्र वृक्ष को सूखने से बचाने के लिए सर्वदा इसकी जड़ सींचते हैं, साथ ही सुगन्धित पुष्प ऊपर रख देते हैं। पत्थरों की दीवार के कारण वृक्ष बढ़ नहीं सकता है।”

एक और विदेशी यात्री जेम्स फोरब्स १८ अगस्त, १७८५ ई० में इलाहाबाद आए। उन्होंने इलाहाबाद का किला देखा और पातालपुरी मन्दिर का वर्णन इस प्रकार किया है।

“तृतीय वर्ग में हिन्दुओं का पीपल वृक्ष के नाम से निर्मित एक प्रसिद्ध मन्दिर है, जिस पर शहर का नाम-करण हुआ है। मुसलमानों के विध्वंस-कारी आक्रमणों को इस पवित्र वृक्ष ने रोका और इस सम्बन्ध में बहुत-सी कथाएँ कही जाती हैं। अपने प्रयत्न में विफल होने के कारण मुसलमान इसे इलाहाबाद अथवा ईश्वर का स्थान कहकर पुकारते हैं।

मन्दिर में अत्यधिक अंधेरा होने के कारण हम टार्च की रोशनी में बहुत से खम्भों की सहायता से नीचे गए। वहाँ बहुत से स्थानों में पानी छिड़का हुआ था, जिससे भूमि गीली तथा गन्दी हो गई थी। बगल की दीवार में काटकर हिन्दुओं की विभिन्न देव-मूर्तियाँ अजन्ता की भाँति रखी हुई हैं। समुद्र की तरफ पतली वृत्ताकार दीवार में हिन्दुओं का पवित्र तथा आश्चर्य-मय पीपल का वृक्ष स्थित है।”

गदर के पश्चात् सन् १८६० ई० में एक बङ्गाली सज्जन बाबू भोलानाथ चन्द्र इलाहाबाद आए। उनकी ‘एक हिन्दू की यात्राएँ’ एक अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय की लिखी हुई अपने

ढङ्ग की पहली पुस्तक है। उन्हें किले के ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों द्वारा किला देखने की पूर्ण सुविधा प्रदान की गई। उनकी पुस्तक १८६६ ई० में प्रकाशित हुई थी।

बाबू भोलानाथ चन्द्र 'पातालपुरी-मन्दिर' भी गए थे और उन्होंने उसका इस प्रकार वर्णन किया है—

“एक मार्ग, जो एक गुफा की ओर जाता था, कुछ दूर जाकर कोयले के ढेर से बन्द-सा था। आज-कल इस गुफा को देखने की तीर्थ-यात्रियों को आज्ञा नहीं है और इसका प्रयोग सामान रखने के लिए किया जाता है। १५ वर्ष पूर्व हमारे कतिपय सम्बन्धियों ने इस रोचक गुफा को देखा था। उन्हें एक दीपक के प्रकाश में गहन अन्धकार-पूर्ण मार्ग से जाना पड़ा था। घिरे हुए उस स्थान से दुर्गन्ध निकल रही थी। गुफा ७ फीट ऊँचे वर्गाकार मन्दिर में ले जाती थी, जिसकी छत स्थूल दीवारों और स्तम्भों पर आश्रित थी। इसके मध्य में एक विशाल शिव-लिङ्ग है, जिस पर यात्री जल चढ़ाते हैं। इस प्रधान मूर्ति के चारों ओर हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं।

बाँई ओर एक शुष्क दो नोकवाला वृक्ष दिखलाई पड़ा, जिसका सूखा हुआ तना कई सौ वर्षों से वहाँ विराजमान है। यही 'अक्षय-वट' या 'अमर-वट-वृक्ष' है, जिसमें आज भी रस तथा जीवन-तत्त्व है। टीफोन थालर ने एक शताब्दी पूर्व अपने समय में इसे पत्र-रहित देखा था। तीर्थ-यात्री इस वृक्ष का सिञ्चन सावधानी से करते हैं। इसके समीप दीवार में एक छिद्र है, जिसमें से सरस्वती की श्रोतस्विनी एक धारा दिख-

लाई गई है। वहाँ सङ्गम की ओर एक और छिद्र है और तीर्थ-यात्री प्राचीन काल में इस मार्ग का पता लगाने में प्रायः जल-समाधिस्थ हो जाते थे।

यदि 'पाताल-पुरी' को एक गुफा-मन्दिर ही समझा जाय, तो इसे बजाय ब्राह्मणों के बौद्धों का कहना चाहिए। बौद्धों ने ही गुफा-मन्दिर-निर्माण की वृद्धि की। एलोरा एवं एलीफेण्टा के मन्दिरों की भाँति यह मन्दिर भी उनके देवों का आश्रम होने के लिए शैवों के हाथ में पड़ गया होगा। 'वट-वृक्ष' भी सूर्य के प्रकाश एवं वायु के अभाव से सम्बर्धित न हो सका होगा। आजकल यह फिर बन्द कर दिया गया है। सम्भव है, यह गुप्त अवस्था में ही स्थित रहे, जब तक कि भावी पीढ़ियों द्वारा खोला न जाय।"

ऐसा प्रतीत होता है कि यह मन्दिर सन् १८४५ के लगभग बन्द कर दिया गया होगा और लगभग १८६५ अथवा १८६६ तक बन्द रहा, जैसा कि श्री भोलानाथ चन्द्र की १८६६ में प्रकाशित पुस्तक की निम्न टिप्पणी से स्पष्ट है—

"हमारा अन्तिम निर्देश व्यर्थ है क्योंकि सहृदय सरकार ने उस मन्दिर को तीर्थ - यात्रियों के दर्शनार्थ पुनः खोल दिया है।"

जनरल कनिङ्गम की पुरातत्त्व-सम्बन्धी रिपोर्ट भी इस पर प्रकाश डालती है। इसका विवरण यह है कि—

"ह्वेनसांग के अनुसार इलाहाबाद दो नदियों के सङ्गम पर एक बड़े बालू के मैदान के पश्चिम में बसा हुआ था। नगर के मध्य में एक ब्राह्मण-मन्दिर था, जिसमें एक पैसा भी दान देना अन्य स्थानों के १००) के दान के समान था। मन्दिर के प्रधान

गृह के समक्ष एक विशाल वृक्ष था, जिसमें दीर्घ विस्तृत शाखाएँ थीं। कहा जाता है कि वह एक दैत्य का निवास-स्थान था। वह वृक्ष उन तीर्थ-यात्रियों की अस्थियों से घिरा था, जिन्होंने मन्दिर के समक्ष आत्मोत्सर्ग किया था। यह एक प्रथा या अन्ध-विश्वास था, जो अनादि-काल से चला आ रहा था।

यह छाया-हीन 'वट-वृक्ष' आज भी प्रयाग में पूजा जाता है। यह वृक्ष आज भी पृथ्वी के भीतर एक ओर स्थित है या एक स्तम्भ के पास है, जो ह्वेनसांग द्वारा वर्णित मन्दिर का एक अवशेष है। प्रारम्भ में मन्दिर एवं वृक्ष दोनों पृथ्वी के मूल स्तर पर रहे होंगे या कूड़ा-करकट की सतह बढ़ने से धीरे-धीरे ढँकते गए। यहाँ तक कि आज मन्दिर का निम्न-भाग पूर्ण-तया भू-गर्भ में अवस्थित है। सुदूर ऊपर का भाग हटा दिया गया है और 'अक्षय-वट' तक ले जानेवाला एक-मात्र मार्ग प्राप्य है, जो एक वर्गाकार स्तम्भ-युक्त आँगन को जाता है। वह आँगन एक बार बिल्कुल खुला हुआ था, परन्तु वृक्ष के रहस्य को गुप्त रखने तथा अन्धकार के लिए यह बन्द कर दिया गया।"

मुहम्मद गजनवी के समय में अलबरूनी ने 'अक्षय-वट' का वर्णन 'प्रयाग का वृक्ष' कहकर किया है। १७वीं शताब्दी में क्षेत्र-फल में लगभग २ मील एक बड़ा बालू का मैदान शहर और सङ्गम के बीच विस्तृत था और चूँकि वृक्ष शहर के बीच में था, अतः यह अवश्य ही सङ्गम से एक मील दूर रहा होगा, लेकिन ६वीं शताब्दी के पश्चात् अकबर के शासन-काल में अब्दुल कादिर ने उस वृक्ष का वर्णन किया है, जिस पर से लोग नदी में कूदते थे। इस विवरण से यह अनुमान किया जा सकता है कि अकबर और ह्वेनसांग के बीच लम्बे काल में

दोनों नदियों ने उस बड़े बालू के मैदान को बहा दिया होगा । इस प्रकार वे शहर के इतने निकट पहुँच गई होंगी कि वह पुण्य वृक्ष एकदम जल के किनारे आ गया होगा क्योंकि प्रयाग का प्राचीन नगर बिल्कुल लुप्त-सा हो गया है ।

हमें बौद्ध-कालीन उन विभिन्न स्तूपों के अवशेष भी प्राप्त नहीं हैं, जिनका वर्णन चीनी यात्री ने ७वीं शताब्दी में किया था । वस्तुतः नगर के दक्षिण-पश्चिम में उनकी स्थिति से यह सम्भव है कि वे नगर के विध्वंस होने के बहुत पहले यमुना में बह गए होंगे क्योंकि उक्त नदी-मार्ग सङ्गम के ३ मील तक पश्चिम एवं पूर्व-गत कई शताब्दियों से रहा है ।”

जनरल कनिङ्गम की रिपोर्ट १८६५ ई० के लगभग प्रकाशित हुई । पातालपुरी मन्दिर के पुनः खुलने के बाद उसमें कुछ मरम्मत हुई होगी । वृक्ष के तने को, जो मन्दिर में था, जनरल कनिङ्गम ने वास्तविक ‘अक्षय-वट’ माना है । अगर उन्होंने ‘पातालपुरी-मन्दिर’ को देखा होता, तो यह सम्भव नहीं है कि वे उस कुन्दे के विषय में अन्धकार में रहते । सम्भवतः वे तत्कालीन सैनिक अधिकारियों के मामलों में बनावटी वृक्ष के सम्बन्ध में दखल न देना चाहते रहे हों ।

ह्वेनसांग द्वारा वर्णित ‘बालू के मैदान’ के सम्बन्ध में उनका निर्णय स्पष्टतः अनुपयुक्त एवं अपूर्ण है । वह बालू का मैदान कोई अलग भाग नहीं था, जो प्राचीन प्रयाग और सङ्गम को पृथक् करता था । जहाँ पर वर्तमान किला है, नदी की धारा एक ओर भूँसी के उच्च कगारों तथा दूसरी ओर वर्तमान किले के बीच सीमित थी । वर्षा-काल में नदी सम्पूर्ण भू-भाग को

घेर लेती थी। ग्रीष्म तथा शीत-काल में नदी के सूख जाने पर लम्बा-चौड़ा मैदान पड़ जाता था। यही अवस्था प्रायः आज भी पाई जाती है। गङ्गा की धारा कभी भूँसी की ओर अधिक झुक जाती है। इस प्रकार बालू का बड़ा मैदान बन जाता है, जहाँ प्रति-वर्ष माघ-मेला लगा करता है।

सम्राट् हर्ष के साथ माघ के समय आए हुए ह्वेनसांग ने अवश्य ही इसी रेतीले मैदान को देखा होगा। अस्तु, जनरल कनिङ्गम का यह वर्णन कि अकबर और ह्वेनसांग के बीच के लम्बे समय में दोनों नदियों ने बालू के बड़े मैदान को बहा डाला था, ठीक नहीं मालूम पड़ता। उनका यह कथन सम्भवतः ठीकहो कि 'पातालपुरी-मन्दिर' का स्थान वह रहा होगा, जहाँ प्राचीन देव-मन्दिर था, जिसे ह्वेनसांग न देखा था। वह प्राचीन शूलटङ्केश्वर का मन्दिर था, जिसके सामने दक्षिण की ओर प्राचीन 'अक्षय-वट' था, जो आज हमें पुनः खोज किए हुए 'अक्षय-वट' की स्थिति की ओर इङ्गित करता है।

बहुत सम्भव है कि 'पातालपुरी-मन्दिर' बहुत विशाल रहा हो और आज की अपेक्षा अधिक स्थान घेरे रहा हो तथा अंग्रेज सैनिक अधिकारियों ने इसकी लम्बाई कम कर दी हो अथवा इसकी बाह्य सीमाओं को बन्द कर वर्तमान स्थिति में लाकर इसको अत्यन्त छोटा बना दिया हो। श्री चन्द्र के कथनानुसार किले के अधिकांश निर्माण-कार्य १८६५ ई० के पश्चात् किए गए। 'पातालपुरी-मन्दिर' में कुन्दे की पूजा कब से प्रारम्भ हुई, इसकी सही तिथि अज्ञात है। इसकी पूजा का प्रारम्भ १५७५ ई० के पश्चात् तथा १७७५ ई० के पूर्व हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल एवं अंग्रेजी शासन की संरक्षता में यह कुन्दा देश के लाखों भक्तों द्वारा 'अक्षय-वट' मानकर पूजा गया है। अंग्रेजों ने इस तथ्य को गुप्त रखने में बड़ी सावधानी रखी। हमारे सामने कुछ अंग्रेज लेखकों तथा सैनिक उच्च अधिकारियों के मत हैं, जिन्होंने कुन्दे की प्राचीनता का वर्णन किया है। यह मान लेना कठिन है कि वे इस तथ्य से अनभिज्ञ थे। शताब्दियों तक यह रहस्य छिपा रखना सचमुच एक आश्चर्य है।

कहा जा सकता है कि 'पातालपुरी' के मन्दिर में स्थित कुन्दा 'अक्षय-वट' के प्रति-मूर्ति-स्वरूप है क्योंकि अब 'अक्षय-वट' का अस्तित्व नहीं रहा, परन्तु इसके विपरीत यह कहा जाता है कि वह कुन्दा एक हरा वृक्ष है, जिसमें जड़ें हैं और यही 'अक्षय-वट' है। अंग्रेजों ने 'पातालपुरी-मन्दिर' के इस रहस्य की पूरी तरह से रक्षा की। तीसरे या चौथे साल जब यह कुन्दा सड़ जाने के बाद बदला जाता था, तो यह कार्य अंग्रेज सैनिकों के निरोक्षण में रात को किया जाता था, जिससे किसी को यह रहस्य ज्ञात न हो सके। अंग्रेजों के भारत से चले जाने के बाद इस कुन्दे के बदलने की समस्या उपस्थित हुई। मन्दिर के अध्यक्षों ने जब देखा कि कुन्दा बिना बदले काम नहीं चलेगा, तब उन्होंने भारतीय सैनिक अधिकारियों से उसके बदलने की स्वीकृति माँगी।

२० जून, १९५१ ई० को पुनः यह कुन्दा बदला गया, जिसका समाचार दैनिक पत्रों 'लीडर' तथा 'भारत' में २४ जून, सन् १९५१ में निम्नलिखित रूप में प्रकाशित हुआ—

“इलाहाबाद, २३ जून । इलाहाबाद के किले में भू-गर्भस्थ ‘पातालपुरी-मन्दिर’ में ‘अक्षय-वट’ के रूप में जिस पुराने तने की पूजा की जाती थी, उसके स्थान पर एक नई शाखा स्थापित की गई । प्राप्त सूचना के अनुसार तथा जिसकी पुष्टि सरकारी माध्यम द्वारा हो चुकी है, यह कहा गया है कि मन्दिर के प्रधान पुरोहित ने अधिकारियों से लिखित प्रार्थना की थी कि यह शाखा बहुत पुरानी हो गई है और इसके स्थान पर नई शाखा स्थापित करने की आज्ञा दी जाय । धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचाने के उद्देश्य से और पुजारियों के रवाज न टूटने के विचार से उन्हें शाखा-परिवर्तन की आज्ञा दे दी गई । ३६ पण्डों तथा २० मजदूरों ने उसी ढङ्ग की एक वृक्ष की शाखा लाकर उस स्थान पर स्थापित कर दी । यह कार्य अँधेरी रात को ८ बजे सम्पन्न किया गया । इस अवसर पर पुरोहित ने किले के भीतर के व्यक्तियों को तथा त्रिवेणी-तट के व्यक्तियों को प्रसाद वितरित किया ।”

इस समाचार से ‘लीडर’ तथा ‘भारत’ में छपे हुए उस समाचार की पुष्टि होती है, जिसमें यह कहा गया था कि ‘पातालपुरी-मन्दिर’ में जिस ‘अक्षय-वट’ की पूजा होती है, वह असली नहीं है और असली ‘अक्षय-वट’ का अंश-वृक्ष किले के अन्य किसी स्थल में छिपा पड़ा है, जहाँ जनता नहीं जा सकती ।

भारत के भूतपूर्व सर्वोच्च न्यायाधीश श्री एम० पतञ्जलि शास्त्री ने अप्रैल, ५२ में ‘पातालपुरी’ के मन्दिर में वृक्ष के कुन्दे तथा नए खोज किए गए ‘अक्षय-वट’ का अंश-वृक्ष देखा । उनका

मत ३ अप्रैल, सन् १९५२ ई० के 'लीडर' में प्रकाशित हुआ था, जो इस प्रकार है—

“लीडर के निजी सम्वाद-दाता से 'अक्षय-वट' के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश ने कहा कि जब यह सिद्ध हो गया है कि 'पातालपुरी' के मन्दिर में जो 'अक्षय-वट' है, वह लकड़ी का कुन्दा है, जिसे हर तीसरे-चौथे साल सैनिक अधिकारियों की सहायता से बदल दिया जाता है, तब जनता के साथ यह धोखा-धड़ी अब क्यों की जाती है ? उन्होंने यह भी कहा कि नए खोजे हुए वृक्ष की आयु आदि की जाँच के बाद यह प्रमाणित हो गया है कि यह 'अक्षय-वट' का शेषांश है, तो उसे जनता के दर्शनार्थ खोल देना चाहिए ।”

अंग्रेजी शासन की समाप्ति के पश्चात् जब किले का शासन भारतीय सैनिकों के अधिकार में आ गया, तब नकली 'अक्षय-वट' के रहस्य का भेद खुलना स्वाभाविक ही था ।



अक्षय-वट की खोज

अखिल भारत के हिन्दुओं के लिए प्रयाग का 'अक्षय-वट' अत्यन्त श्रद्धास्पद एवं पूजनीय है। 'अक्षय-वट' आज भी स्थित है या नहीं, इस विषय ने सदा कौतूहल उत्पन्न किया है। प्रयाग के नागरिक अपने पूर्वजों से गत कुछ पीढ़ियों से यह सुनते आए हैं कि प्रयाग किले के 'पातालपुरी-मन्दिर' में दिखाया जानेवाला कुन्दा वास्तविक 'अक्षय-वट' का अंश नहीं है। असली 'अक्षय-वट' तो किले में मन्दिर के दक्षिण की ओर किसी क्षेत्र में है, जहाँ किसी भारतीय को जाने की अनुमति नहीं है। श्रद्धालु तीर्थ-यात्री जब 'पाताल-पुरी' के मन्दिर में कुन्दे का दर्शन करने जाते थे, तो उनके मन में सदैव यह भ्रम रहता था कि क्या यह वास्तविक 'अक्षय-वट' है, परन्तु इससे उन्हें पुरातन 'अक्षय-वट' का स्मरण हो आता था और वहाँ स्थापित कुन्दे की अपेक्षा वे 'अक्षय-वट' के नाम के प्रति विशेष-तया सम्मान प्रकट करते थे।

लाखों तीर्थ-यात्री, जो स्नानार्थ यहाँ आते थे, वे 'अक्षय-वट' नाम के प्रति आदर प्रकट करते थे और वे यह मालूम करने की चिन्ता नहीं करते थे कि यह कुन्दा वास्तविक है या कृत्रिम। अगस्त, १९४७ में देश के स्वतन्त्र होने पर प्रयाग-वासियों ने यह आशा की कि वास्तविक 'अक्षय-वट' के दर्शन की सुविधा सम्भव हो सकती है। शब्दार्थ के अनुसार 'अक्षय-वट' का तात्पर्य ऐसे वट-वृक्ष से है, जिसका कभी नाश न हो। इससे धारणा की गई कि वास्तविक 'अक्षय-वट' किले के किसी ऐसे स्थल में है, जहाँ जनता का प्रवेश नहीं हो सकता।

श्री पं० शिवनाथ काटजू, एडवोकेट, एम० एल० ए० ने इलाहाबाद किले के भीतर वास्तविक 'अक्षय-वट' के ढूँढ़ने का सङ्कल्प किया । भारतीय संस्कृति के अनन्य उपासक श्री काटजू जी को अपने अनवरत परिश्रम, अटूट लगन, प्रशंसनीय अध्यवसाय के बल पर वास्तविक 'अक्षय-वट' खोज निकालने में सफलता प्राप्त हुई । श्री काटजू जी ने ब्रिगेडियर जयपाल तथा किले के तत्कालीन कमाण्डिंग आफिसर मेजर कुन्दनसिंह की सहायता से इस सम्बन्ध में खोज प्रारम्भ की थी । प्रारम्भिक खोज का वर्णन श्री काटजू जी के शब्दों में इस प्रकार है—

“किले के विभिन्न स्थानों को मैंने देखा, परन्तु वहाँ वास्तविक 'अक्षय-वट' का कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ा । इसके पश्चात् मैंने मन्दिर के कुछ योगियों से वास्तविक 'अक्षय-वट' की स्थिति के विषय में पूछ-ताछ की । एक दिन दोपहर के बाद एक योगी मुझे किले के पीछे यमुना जी की ओर लिवा ले गए और किले की दीवार के पत्थरों में खुदे हुए कमल की ओर इङ्गित करते हुए उन्होंने बतलाया कि परम्परागत कथनानुसार यह कहा जा सकता है कि वास्तविक 'अक्षय-वट' इसके समीप कहीं होना चाहिए ।

“उन्होंने बतलाया कि यह कथन हमारे वंश में पीढ़ियों से चला आ रहा है । इस स्थान के सामने यमुना जी के दूसरी ओर महादेव जी का मन्दिर है । यमुना-तट पर कमल-चिह्न के स्थान से किले के भीतर किसी वृक्ष की चोटी दिखलाई पड़ती थी । किले में दूसरे दिन जाने पर मैं उस वृक्ष के निकट पहुँचना चाहता था, परन्तु वह स्थान बन्द था और किले के

अधिकारियों को उस वृक्ष तक मार्ग निकालने में लगभग तीन सप्ताह लगे । २८ जुलाई, सन् १९४० ई० को मेजर कुन्दनसिंह तथा उनके कुछ अफसरों के साथ मैंने सर्व-प्रथम उस वृक्ष को देखा । यह स्थान सड़ी पत्तियों से लगभग एक फीट की गहराई तक ढँका हुआ था और सर्पों से भरा हुआ था । किले के अधिकारियों ने एक मार्ग साफ कराया, जिससे हम वृक्ष के नीचे तक पहुँच गए ।”

‘प्रयाग-माहात्म्य शताध्यायी’ संस्कृत वाङ्मय का एक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है । इसमें ‘प्रयाग’ तथा उसके प्रसिद्ध स्थलों का सजीव वर्णन है । इससे यह प्रमाणित होता है कि अक्षय-वट गङ्गा और यमुना के सङ्गम के निकट यमुना के किनारे था ।

‘तस्य वै दक्षिणे भागे, सौरी वहति सर्वदा ।’

अक्षय-वट के समीप उत्तर की ओर शूल-टंकेश्वर मन्दिर था । अक्षय-वट के समीप पश्चिम की ओर पास ही सूर्य-कुण्ड, पाप-मोचन, काम-तीर्थ, कपिल आश्रम और तक्षक कुण्ड थे । तक्षक कुण्ड के पश्चिम कुछ दूरी पर ‘चक्र-तीर्थ’ तथा ‘चक्र-तीर्थ’ के पश्चिम में ‘सिन्धु-सागर’ और ‘पञ्च पाण्डव’ था । सिन्धु-सागर के उत्तर में ‘वरुण आश्रम’ था । ‘वरुण आश्रम’ के उत्तर में ‘अत्रि आश्रम’, उसके और उत्तर में ‘भरद्वाज आश्रम’ तथा ‘भरद्वाज आश्रम’ के उत्तर में ‘सीता आश्रम’, ‘गौतम आश्रम’ तथा ‘जमदग्नि आश्रम’ था, इसके उत्तर-पूर्व की ओर ‘वासुकि’ था । प्रयाग-माहात्म्य शताध्यायी के अनुसार ‘वासुकि’ के दक्षिण की ओर ‘ब्रह्म-कुण्ड’, उसके कुछ दक्षिण ‘दशाश्वमेध’

तथा कुछ और दूरी पर दक्षिण में 'शिव-मन्दिर' तथा 'लक्ष्मी-तीर्थ' था । इसके और दक्षिण में 'शूल-टंकेश्वर' मन्दिर था ।

स्थानों के इस वर्णन से अक्षय-वट की स्थिति वर्तमान किले के दक्षिण-पूर्व कोने पर स्पष्ट हो जाती है, जहाँ पर नया खोज किया हुआ अक्षय-वट स्थित है । 'प्रयाग - माहात्म्य' के वर्णन के अनुसार प्राचीन प्रयाग नगर वर्तमान किले के स्थान पर था । इस वर्णन को ह्वेनसांग के वर्णन के साथ पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि प्रयाग का तीर्थ-नगर वहाँ पर स्थित था, जहाँ वर्तमान किला है तथा तीर्थ के 'भरद्वाज आश्रम' आदि स्थान समीप-वर्ती वन में थे । यह प्रतीत होता है कि किला-निर्माण के समय यमुना की ओर विस्तीर्ण 'अक्षय-वट' की एक शाखा छोड़कर सारा वृक्ष काट दिया गया । प्रयाग की लोक-कथा से भी इस मत की पुष्टि होती है । यह वृक्ष किले की दीवार के निकट ठीक उस स्थान के ऊपर है, जहाँ दीवार पर एक गोलाकार 'कमल' अङ्कित है । प्रयाग की जनता में बराबर यह किम्बदन्ती चली आ रही है कि असली 'अक्षय-वट' इस 'कमल के चिह्न' के निकट किले के अन्दर है ।

प्रयाग विश्व-विद्यालय के वनस्पति-विज्ञान के प्रोफेसर तथा 'डोन फंकल्टी आफ साइन्स' डा० रञ्जन ने सैनिक अधिकारियों की प्राथना पर नए खोजे हुए 'अक्षय-वट' की परीक्षा की । उनकी रिपोर्ट संक्षेप में इस प्रकार है—

“नए खोजे हुए अक्षय-वट में चोटी तथा ऊपर की शाखाओं को शक्ति देने के लिए खम्भे के रूप में उसकी लम्बी जड़ें हैं । बहुत-सी इनमें ऊपर से गिरी हुई जड़ें हैं, जैसा कि वट-वृक्ष में

होती हैं। इनमें से वृक्ष की मुख्य एक बड़ी शाखा वर्तमान भूमि-स्तर से ६ फीट की ऊँचाई पर काटी हुई प्रतीत होती है। ऊपर के चिह्नों से यह बहुत प्राचीन मालूम होती है। चिह्न के नीचे मुख्य तने में बहुत सी ऊपर से गिरी जड़ें लिपटी हुई हैं और बहुत सी शाखाएँ इनसे निकली हुई हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसकी बहुत सी शाखाओं के तने काटे गए हैं।

“वृक्ष की मुख्य ऊपर से गिरी हुई शाखाएँ पृथ्वी के स्तर से निम्न-भाग तक आई हैं। इससे ज्ञात होता है कि उसका निम्न स्तर पृथ्वी के भर जाने से हुआ है। सम्भव है, मुख्य वृक्ष कट जाने पर ये शाखाएँ विकसित हुई हों, जैसा कि अच्छी तरह ज्ञात है कि मुख्य तने के कट जाने पर पार्श्व-वर्ती शाखाएँ उसके नीचे आ जाती हैं।

“मुख्य तने में ४०० वार्षिक चक्राकार चिह्न हैं तथा मुख्य तने के शेष भाग में लगभग १०० चक्राकार चिह्न हैं। इस तरह मुख्य तने में लगभग ५०० चक्राकार चिह्न हैं। पास की शाखाओं में इसी तरह के वार्षिक २०० चक्राकार चिह्न हैं। प्रत्येक चक्राकार चिह्न की चौड़ाई के अनुसार भी गणना की गई और उक्त चक्राकार चिह्न ठीक पाए गए। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्ष कटने के समय मुख्य शाखा लगभग ५०० वर्ष पुरानी थी। इस सम्बन्ध में और अधिक निश्चित मत नहीं दिया जा सकता क्योंकि कहीं-कहीं वार्षिक चक्राकार चिह्न नहीं निकलते अथवा एकाध अधिक आ जाते हैं।

“पहले कहा जा चुका है कि मुख्य तने के कटने पर शाखाएँ उसके नीचे आ जाती हैं। इस वृक्ष में मुख्य तना २०० वर्ष

के पूर्व काटा हुआ प्रतीत होता है, जैसा कि उसकी एक दो सौ वर्ष की पुरानी शाखा से प्रकट होता है। इनमें कुछ अन्य शाखाएँ मोटी हैं और लगभग २५० वर्ष या उससे कुछ अधिक पुरानी हैं।

“अतः शाखाओं की स्थिति का ध्यान रखते हुए यह कहा जा सकता है कि मुख्य तना २५० वर्ष पूर्व काट दिया गया हो।”

इससे स्पष्ट होता है कि ‘अक्षय-वट’ वर्तमान किले के दक्षिण-पूर्व कोने पर था और जब १५७५ ई० में किले का निर्माण प्रारम्भ हुआ, तो हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का ध्यान रखकर लगभग १०० वर्ष पुरानी एक शाखा छोड़ दी गई। डा० श्रीरञ्जन की परीक्षा के अनुसार वर्तमान वृक्ष किले के निर्माण के पूर्व समय का है और जब कि वह पुराने अक्षय-वट के स्थान पर है, तब वह अवश्य ही अक्षय-वट का अंश है। ऐसा हो सकता है कि उस स्थान तक जनता को कुछ समय तक जाने का अधिकार रहा हो।

कमल-चिह्न के निकट का वर्तमान वृक्ष, किले के शाही महलों के अत्यन्त समीप था। इन्हीं महलों में किले के गवर्नर भी रहते थे और जब बादशाह इलाहाबाद के किले में ठहरते थे, तो वे भी इन्हीं महलों में रहते थे। अपने पिता के शासन के अन्तिम वर्षों में, जहाँगीर इलाहाबाद के किले में लगभग पाँच वर्ष रहा। वृक्ष का समीप-वर्ती भवन, शाही निवास-स्थान के समीप, साधारण जनता के आने से अधिकारियों को असुविधा होती रही हो और इसीलिए अक्षय-वट को तीर्थ-स्थान पाताल-पुरी मन्दिर में बना दिया गया।

ऐसा कहा गया है कि जहाँगीर जब किले में निवास कर रहा था, तो उसे अक्षय-वट के विषय में बतलाया गया। उस समय वृक्ष की केवल एक शाखा थी। उसका कौतूहल बढ़ा और उसने लोहे का एक बड़ा तवा बनवाया। वह वृक्ष काट डाला गया और उस पर लोहे का तवा रखकर अग्नि प्रज्वलित कर दी गई। अग्नि कई दिन तक जलती रही और उसके पश्चात् जले हुए वृक्ष में से फिर नई निकलती हुई शाखा देखकर बादशाह चकित हो गया।

‘इम्पोरियल गजेटियर’ में भी लिखा है कि जहाँगीर ने अक्षय-वट के वृक्ष को जलाया था। इस वृक्ष पर जलाए जाने के चिह्न भी हैं। इस वृक्ष की स्थिति की यह विशेषता है कि यह यद्यपि किले की चार-दीवारी के अन्दर है, पर भवनों की अवलि के बाहर है और इसके निकट ही एक दरवाजा है, जिससे बाहर के लोग भी बिना किले की व्यवस्था में दखल दिए आकर दर्शन कर सकते हैं। बहुत सम्भव यह भी है कि अकबर ऐसे सहिष्णु सम्राट् ने इसकी व्यवस्था जान-बूझ कर की हो।

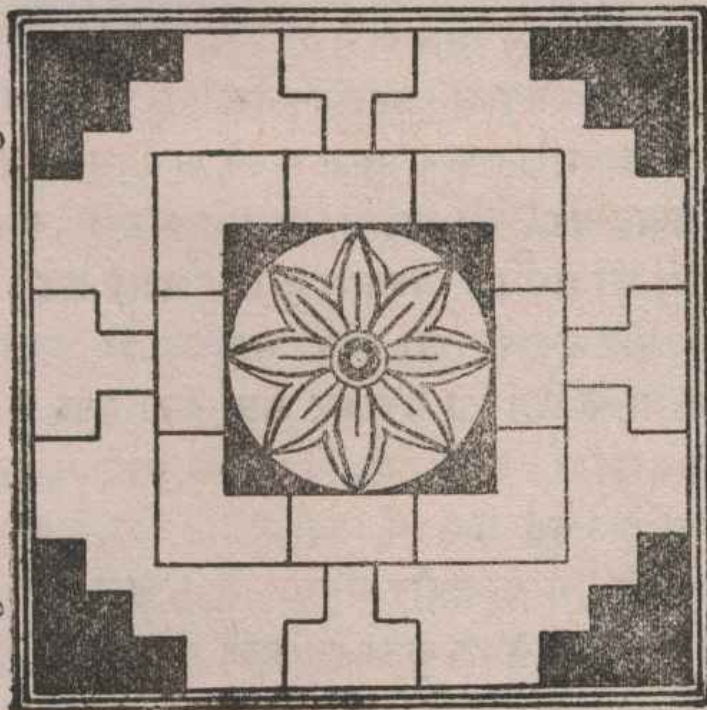
कुछ लोगों की यह शङ्का थी कि आज जहाँ ‘पातालपुरी’ में अक्षय-वट की पूजा होती है, सम्भव है वहीं कभी अक्षय-वट रहा हो और उसके नष्ट होने के बाद वहाँ प्रतीक-रूप में उसकी पुनः प्रतिष्ठा की गई हो। यदि वहाँ खुदाई की जाए, तो शायद कुछ अवशेष मिलें। जाँच करने पर सैनिक अधिकारियों द्वारा यह ज्ञात हुआ कि ‘पाताल-पुरी’ के नीचे किले का सबसे बड़ा नाला है।

प्रस्तुत विवरण के आधार पर किले के दक्षिणी-पूर्वी भाग में खोज किया हुआ वृक्ष 'अक्षय-वट' का शेषांश प्रमाणित होता है। 'प्रयाग' के कतिपय सम्भ्रान्त नागरिकों ने 'अक्षय-वट' मानकर ही इसे प्राचीन काल से प्रणाम किया है। खुल्दाबाद-निवासी स्वर्गीय पण्डित रामावतार जी त्रिवेणी-स्नान करके जब लौटते थे, इस वृक्ष की 'अक्षय-वट' के रूप में स्तुति करते थे। प्रयाग-स्थित 'धर्म-ज्ञानोपदेश पाठशाला' का जीर्णोद्धार करनेवाले पूज्य-पाद श्री १०८ विष्वम्भर ब्रह्मचारी जी भी इस वृक्ष को 'अक्षय-वट' ही कहा करते थे। प्रयाग के दान-वीर चौधरी महादेवप्रसाद के पिता स्वर्गीय रुद्रप्रसाद जी ने विद्वानों की सम्मति से प्रयाग की पञ्च-कोशी परिक्रमा का प्रबन्ध किया था और बड़े अन्वेषण के साथ प्रयागस्थ जितने भी तीर्थ हैं, उनके नामों के पत्थर स्थान-स्थान पर गड़वाए थे और इसी को अक्षय-वट की मान्यता दी गई थी।

दूसरी बार स्वर्गीय महा-मना पण्डित मदनमोहन मालवीय महाराज और प्रयाग के विद्वानों की सम्मति से बलुग्रा-घाट के शिव-लोक-वासी सदाशिवनारायण जी चैतन्य ब्रह्मचारी ने एक बहुत बड़ा 'यज्ञ' किया था और उसी समय बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों की सभा करके पञ्च-कोशी के ओर स्वर्गीय चौधरी रुद्रप्रसाद जी के गड़वाए हुए पत्थरों को, जो छिन्न-भिन्न तथा लुप्त हो गए थे, ब्रह्मचारी जी ने पुनः नवीन रूप दिया और किले के दक्षिण पार्श्व की दीवाल में जो कमल का फूल बना हुआ है, उसी के नीचे अक्षय-वट का एक पत्थर गड़वाया था।

श्री काटजू जी ने अक्षय-वट की खोजकर हिन्दू-जाति की महान् सेवा की है।

इस महान् प्रयास के लिए पं० शिवनाथ काटजू कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं। इस सत्-प्रयास तथा पुनीत कार्य के लिए श्री काटजू जी का नाम तो सदैव अमर रहेगा ही, साथ ही हिन्दुओं का यह दृढ़ विश्वास कि 'अक्षय-वट' अजर-अमर है, उसका उन्मूलन कदापि नहीं हो सकता और वह 'विकिर क्षेत्र' की सीमाओं के भीतर लहलहाता हुआ दिखलाई पड़ेगा, आज पुनः सत्य सिद्ध हुआ है।



अक्षय-वट का शास्त्रीय महत्व

अक्षय-वट अनादि सनातन वृक्ष है। शास्त्रों की मान्यता है कि समस्त ब्रह्माण्ड के भस्मी-भूत हो जाने पर सर्वत्र जल-मय हो उठता है। मार्कण्डेय जो ध्यानावस्थित दशा से उठने पर 'शरण-स्थल' की खोज करने लगते हैं। जल-प्लावन होने पर केवल अक्षय-वट ही शेष रह जाता है। उसी के पत्ते पर बाल-मुकुन्द भगवान् मुख में अँगूठा देकर क्रोड़ा करते हैं। मार्कण्डेय जी भगवान् का दर्शन करते हुए उनकी स्तुति करते हैं तथा 'प्रलय' का दृश्य देखते हैं। इस प्रलय का विस्तार-पूर्वक वर्णन 'ब्रह्म-पुराण' में मिलता है।

'अक्षय-वट' की पूजा अनादि-काल से चली आ रही है। मोक्ष तथा मनोवांछित फल प्राप्त करने के लिए, श्रद्धालु जनता सदैव से 'अक्षय-वट' की अर्चना, वन्दना करती चली आ रही है। हिन्दुओं का धार्मिक विश्वास है कि 'अक्षय-वट' में माधव का वास है और इसको रक्षा स्वयं महादेव जी करते हैं। इस वृक्ष की छाया के क्षेत्र को 'विकिर क्षेत्र' कहा गया है। 'विकिर क्षेत्र' में किया गया श्राद्ध-कर्म, पितरों के लिए अत्यन्त शान्ति-दायक होता है। इस क्षेत्र में दिया हुआ दान, बहुत कल्याणकारी होता है। गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर जब लोग स्नान करते हैं, तो वे सङ्कल्प के समय मन्त्रों से 'अक्षय-वट' को प्रणाम करते हैं। भक्त-राज प्रह्लाद ने भी 'अक्षय-वट' का दर्शन किया था, जिसका वर्णन 'वामन पुराण' के ८३ वें अध्याय में मिलता है :—

दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं, माधवं योग-शायिनम् ।

मार्कण्डेय जी, जिनका 'अक्षय-वट' से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है, 'महा-भारत' के युद्ध के पश्चात् दुःखी युधिष्ठिर को प्रयाग जाने तथा 'अक्षय - वट' दर्शन की सलाह देते हैं। 'पुराण' तथा धार्मिक ग्रन्थों के उद्धरणों से 'अक्षय - वट' की पवित्रता एवं महिमा ज्ञात होती है। 'कूर्म-पुराण' में 'अक्षय-वट' का यह वर्णन मिलता है—

वट-मूलं समाश्रित्य, यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।

स्वर्ग - लोकमतिक्रम्य, रुद्र - लोकं स गच्छति ॥

अर्थात् अकाम, सकाम भावना से भी यदि कोई व्यक्ति 'अक्षय-वट' के मूल में प्राण त्याग देता है, वह स्वर्ग - लोक को अतिक्रमण (पार) कर रुद्र-लोक को प्राप्त होता है।

न्यग्रोधं रक्षते नित्यं, शूल-पाणिर्महेश्वरः ॥

अर्थात् इस 'अक्षय-वट' की नित्य ही शूल - पाणि शङ्कर जी रक्षा करते हैं। अन्यत्र भी अक्षय-वट-शायी बाल-रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

करारविन्देन पदारविन्दं, मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।

वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बालं मुकुन्दं शिरसा नमामि ॥

अर्थात् अक्षय-वट-शायी भगवान् के मैं उस बाल-स्वरूप को सिर से प्रणाम करता हूँ, जो कर - कमल से चरण - कमल को मुखारविन्द में रखते हुए कौतुक करते हैं।

'प्रयाग - माहात्म्य शताध्यायी' संस्कृत वाङ्मय का एक महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्रयाग तथा उसके स्थलों का सजीव वर्णन है। 'अक्षय-वट' की महत्ता, पवित्रता एवं महिमा पर इस ग्रन्थ से सम्यक् प्रकाश पड़ता है। प्रयाग की गौरव-महिमा इस प्रकार इसमें वर्णित है—

सितासिते यत्र तरङ्ग-चामरे, नद्यौ विभातः मुनि-भानु-कन्यके ।
नीलात-पत्रं वट एव साक्षात्, स तीर्थ - राजो जयति प्रयागः ॥

श्वेत और नीली गङ्गा-यमुना नदियाँ जिसके चामर हैं और
अक्षय-वट साक्षात् नीला आत - पत्र है, वह तीर्थ - राज प्रयाग
सबसे श्रेष्ठ है ।

क्षेत्र - चूडा - मणिर्यत्र, राजते वट-वृक्ष-राट् ।

शूलि-ताण्डव-संहृष्ट - माधवो वास - मङ्गलः ॥

‘अक्षय - वट’ जहाँ क्षेत्र का शिरोमणि होकर विराजता है,
शिव जी के ताण्डव से प्रसन्न होकर माधव का जहाँ मङ्गल-मय
वास है ।

परमो वैष्णवो योगी, शिवोऽपि शिव-कृत्-सताम् ।

वट - मूलं समासाद्य, माधवानुग्रहेच्छया ॥

परम वैष्णव योगी शिव भी, जो सज्जनों के कल्याण करने-
वाले हैं, माधव की प्रसन्नता के लिए वट-वृक्ष के समीप बड़े वेग
से नाचते हैं और सुन्दर ताण्डव से माधव को सन्तुष्ट करते हैं ।

अक्षय्य - वट - सुच्छाया, हरितोपल-शोभिता ।

हर्षदा देवतादीनां, नित्यं यत्र प्रसर्पति ॥

जहाँ ‘अक्षय-वट’ की सुन्दर छाया हरित मणि के समान
शोभित होती है, जिसे देख कर देवता भी प्रसन्न होते हैं ।

तत्-क्षेत्रं विकिरं नाम, कीर्तनादघ - नाशनम् ।

किं पुनर्वर्शन-स्नान - पान - वासैः फल - प्रदम् ॥

वह जहाँ फैलती है, उसे ‘विकिर - क्षेत्र’ कहते हैं । इसका
नाम ही लेने से पाप नष्ट हो जाते हैं, दर्शन, स्नान, पान और
वास से फल देता है । इसकी तो कोई बात ही नहीं ।

वट - मूलेति विख्यातं, सर्व - देवर्षि - सम्मतम् ।

यत्रेष्टं ब्रह्म - देवेन, क्रतूनां दशकेन च ॥

‘वट - मूल’ नाम से ही प्रसिद्ध एक स्थान है । उसे देवता, ऋषि आदि सभी मानते हैं, जहाँ ब्रह्मा ने दस यज्ञ किए थे ।

यत्र चैकार्णवे शेते, नष्टे स्थावर - जङ्गमे ।

सर्वत्र जल - सम्पूर्णे, वटे बाल - वपुर्हरिः ॥

जहाँ समस्त संसार के जल-मय होने पर, स्थावर-जङ्गम के नष्ट हो जाने पर, स्थल के जल के रूप में परिणत हो जाने पर बाल-शरीर-धारी स्वयं हरि सोते हैं ।

तत्पर्ण - पुटके बालं, स्वपन्तं गिरिशदयः ।

बद्धाञ्जलि-पुटाः सन्तः, स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥

उस ‘वट-पत्र’ पर सोए हुए बालक जगदीश्वर की महा-देव आदि हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं ।

स्वयमेवाखिल - श्रेष्ठस्ततोऽक्षय्य - वटान्वितः ।

कालिन्द्याः गङ्गाया वाराया यथोत्तर-समन्वितः ॥

‘प्रयाग’ स्वयं ही सर्वश्रेष्ठ है, उसमें वहाँ ‘अक्षय - वट’ है, गङ्गा, यमुना और सरस्वती का सङ्गम है ।

वैकुण्ठेन तथा हृष्टो, वसते माधवः प्रभुः ।

प्रसन्नस्तीर्थ - राजे च, यथास्त्वक्षय्य - पादपे ॥

माधव उतनो प्रसन्नता से ‘वैकुण्ठ’ में नहीं रहते, जितनी प्रसन्नता से ‘प्रयाग’ के ‘अक्षय-वट’ पर रहते हैं ।

तं वटं रक्षति सदा, शूल - पाणिर्महेश्वरः ।

स्थानं रक्षति वै देवा, सर्व - पाप - हरं शुभम् ॥

उस वृक्ष की रक्षा सदा शूल-पाणि महेश्वर करते हैं, पाप-हारी शुभ-स्थानों की रक्षा देवता करते हैं ।

पुरा कल्पापाये भगवति ! शयाने वट-पुटे,

यदा सर्वान् लोकान् जठर-पिठरे संहृतवति ।

तदा क्षेत्रं वेणी जयति जगदीशस्य वसतिः,

प्रयागे ब्रह्माण्डे नहि सम गुणान्या विजयते ॥

पहले प्रलय - काल में जब भगवान् वट - पत्र पर सो गए थे और उन्होंने समस्त लोक को अपने पेट में धारण किया था, उस समय वही 'त्रिवेणी - क्षेत्र' जगदीश का वास - स्थान है । ब्रह्माण्ड में 'प्रयाग' के समान कोई दूसरा 'तीर्थ' नहीं है ।

यत्रैव त्रिगुणा वेणी, राजते विश्व - तारिणी ।

श्रीमाधवोऽक्षय्य - वटस्तस्य को वर्णने क्षमः ॥

जहाँ विश्व को तारनेवाली वेणी है, श्री माधव और 'अक्षय-वट' हैं, उस वेणी का वर्णन कौन कर सकता है !

अकामो वा सकामो वा, वट - मूले मुनीश्वराः ।

शीघ्रं प्राणान् प्रमुच्येत, यदीच्छते परमां गतिम् ॥

अकाम या सकाम शीघ्र ही उसको 'अक्षय-वट' के मूल में प्राण-त्याग करना चाहिए, जो परम-गति चाहता है ।

स्तुत्वा वेणीं स्तुवीताथ, महाऽक्षय्य-वटं कृती ।

यस्य स्तवन - मात्रेण, स्तुतः सर्वे न संशयः ॥

वेणी की स्तुति करके 'अक्षय-वट' की स्तुति करना चाहिए, जिसकी स्तुति से सबकी स्तुति हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ।

जठरेऽखिलमाधाय, त्वयि स्वपिति माधवः ।

कृत्वा मुखाम्बुजे पादौ, नमोऽक्षय्य - वटायते ॥

पाप-

पेट में समस्त संसार को लेकर माधव तुम्हारे यहाँ सोते हैं और मुख से पैर का अँगूठा चाट रहे हैं। आप 'अक्षय - वट' को नमस्कार है।

स्वन्मूले वसते ब्रह्मा, तव मध्ये जनार्दनः ।

त्वदग्रे वसते शूली, तादृशं त्वां नमाम्यहम् ॥

गए थे

था,

न है।

तुम्हारे मूल में ब्रह्मा वास करते हैं, तुम्हारे मध्य में विष्णु वास करते हैं, तुम्हारे अग्र-भाग में शिव का निवास है। तुम अपने समान स्वयं हो। तुमको बार-बार नमस्कार।

एकार्णवे महा - कल्पे, सुषुप्तो माधव - प्रभोः ।

पर्यङ्कु वट - राज त्वं, गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

प्रक्षय-

जब महा-प्रलय के समय समस्त संसार जल - मय हो उठा था, तब माधव के सोने के लिए तुम पलंग बने थे। वट - राज ! यह अर्घ्य ग्रहण करो, आपको नमस्कार है।

प्रयागे च वटे चैतन्माघ - मासे विशेषतः ।

गो - प्रदानं यथा - वित्तमनन्त - फलदं भवेत् ॥

मूल में

'प्रयाग' में 'वट-वृक्ष' के नीचे, विशेष कर माघ - मास में, गो-दान से अनन्त फल प्राप्त होता है।

प्रयागमक्षयं क्षेत्रमक्षया तत्र भूमिका ।

अक्षयो हि वटो यत्र, किं न तत्राक्षयं भवेत् ॥

वाहिए,

नहीं।

'प्रयाग' अक्षय क्षेत्र है, वहाँ की भूमि अक्षय है, वहाँ ही 'अक्षय-वट' है, फिर वहाँ की कौन-सी वस्तु अक्षय न हो !

प्रसिद्ध पौराणिक सूत ने ऋषियों से कहा कि ब्रह्मा के पुत्रों से, विष्णु ने 'अक्षय-वट' का जो माहात्म्य कहा है, वह मैं आप

लोगों से कहता हूँ—किसी समय ब्रह्मा के सनकादिक चार पुत्र विष्णु के दर्शन के लिए वैकुण्ठ गए। उन्हें देखकर भगवान् विष्णु ने भक्ति - पूर्वक उनका स्वागत किया। भगवान् के यह कहने पर कि 'ब्रह्माण्ड - मण्डल' की कोई नई बात कहिए, जो आप लोगों ने देखी हो, सनकादिक बोले—

अथाप्येकं महाऽऽश्चर्यं, प्रयागे दृष्टमद्य वै।

एको महान् वटो दृष्टः, सर्वाश्चर्य-मयो हि सः ॥

'प्रयाग' में हम लोगों ने एक बड़ा आश्चर्य देखा है। वहाँ एक बड़ा 'वट-वृक्ष' है। वह आश्चर्य-मय है।

सनकादि कुमारों के पूछने पर 'अक्षय - वट' के सम्बन्ध में विष्णु भगवान् ने बतलाया—

प्रयागं वैष्णवं क्षेत्रं, वैकुण्ठादधिकं मम।

वृक्षोऽक्षय्य - वटस्तत्र, मदाधारो विराजते।

'प्रयाग' मेरा क्षेत्र है, वह वैकुण्ठ से भी अधिक है; वहाँ 'अक्षय-वट' वृक्ष है, जो मेरा आश्रय है।

मूले यः पुरुषो दृष्टः, सोऽहमक्षय्य - माधवः।

वट - माधव-नामापि, मूल - माधव इत्यपि ॥

मूल में जो पुरुष आप लोगों ने देखा है, वह मैं 'अक्षय-माधव' हूँ। उस पुरुष को 'वट - माधव' एवं 'मूल - माधव' भी कहते हैं।

एवं त्रि - नामा तत्राहं, वसाम्यक्षय्य-पादपे।

ब्रह्मादिभिः सुरैः सर्वैः, सहितस्तीर्थ - नायके ॥

इस प्रकार तीन नाम धारण करके मैं वहाँ पर रहता हूँ। वहाँ तीर्थ-राज में ब्रह्मा आदि देवता भी रहते हैं।

सर्व - रूपाणि संहृत्य, बाल - रूप - धरस्ततः ।

ब्रह्माण्डमुदरे कृत्वा, शयेताक्षय्य - पादपे ॥

सब रूपों को (आठ नाम--१ शङ्ख-माधव, २ चक्र-माधव, ३ गदा-माधव, ४ पद्म-माधव, ५ अनन्त-माधव, ६ बिन्दु-माधव, ७ मनोहर-माधव और ८ असि-माधव) एकत्रित कर ब्रह्माण्ड को 'वट' में रखकर बाल - रूप धारण कर मैं 'अक्षय - वट' पर सोता हूँ ।

तस्याहं कल्प - वृक्षस्य, स्वरूपं वेद्यि नापरः ।

प्रपञ्च - बीज - भूतस्य, तद्वः सर्वे निरूपितम् ॥

उस कल्प-वृक्ष के स्वरूप को मैं ही जानता हूँ, अन्य कोई नहीं जानता । वह संसार का मूल है, उसका वर्णन मैंने आप लोगों से किया ।

अन्यत्र भी प्रसिद्ध पौराणिक सूत जी ऋषियों से कहते हैं—

तस्मादेवं विधो वृक्षो, नास्ति ब्रह्माण्ड - गोलके ।

अतोऽर्चयन्त्यमुं देवा, मनुष्याणां तु का कथा ॥

ऐसा वृक्ष ब्रह्माण्ड में दूसरा नहीं है । इसी से देवता भी इसकी पूजा करते हैं, मनुष्यों की कौन चलावे !

तस्मान्मुनि-वरा ! यूयमेनं पूजयताक्षयम् ।

येऽभ्येऽपि पूजयिष्यन्ति, प्राप्स्यन्ते ते मनोगतम् ॥

इसलिए हे श्रेष्ठ मुनियो ! आप लोग भी इसकी पूजा करें । दूसरे लोग भी, जो इसकी पूजा करेंगे, उनका भी मनोरथ सिद्ध होगा ।

३४ : अक्षय-वट

यात्रार्थमागता ये वै, नरा नार्योऽमलाशयाः ।

सम्पूज्य प्रार्थयन्त्येते, लभन्ते फलमक्षयम् ॥

विशुद्ध-चित्त स्त्री या पुरुष यात्रा के लिए जो यहाँ आएँगे, पूजन एवं प्रार्थना करेंगे, उनको भी अक्षय-फल प्राप्त होगा ।

सृष्टि-कर्त्ता यदा ब्रह्मा, न लेभे सृष्टि-साधनम् ।

तदाक्षय-वटं चैनं, पूजयामास कामदम् ॥

सृष्टि-कर्त्ता ब्रह्मा को जब सृष्टि की सामग्रियाँ न मिलीं, तब मनोरथ पूर्ण करनेवाले इस 'अक्षय - वट' की उन्होंने पूजा की ।

ततोऽक्षयां सृष्टिं दृष्टि, लेभे ब्रह्मा द्विजोत्तमाः ।

सृष्टिं चकार सोऽक्षय्यामण्डजादि-चतुर्विधाम् ॥

तब उनको सृष्टि करने की अक्षय-शक्ति मिली और उन्होंने अण्डज आदि चार प्रकार की अक्षय सृष्टि की ।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः, शूद्रा नार्यश्च सत्तमाः ।

पूजनादस्य संसिद्धि, यास्यन्त्यत्र न संशयः ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्रियाँ इसके पूजन से सिद्धि प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

पुत्र-पौत्र-प्रपौत्राश्च, कुल - वृद्धिः प्रजायते ।

सौभाग्यं लभते नारी, पूजनाज्जन्म-जन्मनि ॥

पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि कुल-वृद्धि होती है । स्त्रियाँ पूजन करने से जन्म-जन्म में सौभाग्य पाती हैं ।

यान् यानभीप्सते कामास्तान् सर्वान् प्रददात्यसौ ।

सन्तान-वर्धनं चापि, सर्व-सम्पत्-करोति च ॥

अन्य जिन मनोरथों की कामना मनुष्य करता है, उन मनोरथों को भी यह देता है। सन्तान और सम्पत्ति भी यह बढ़ाता है।

संशेते वै पुमानाद्यः, संहृत्य भुवन-त्रयम् ।

पादांगुष्ठं करे धृत्वा, पिवन्नास्त्यत्र बालकः ॥

तीनों भुवनों को एकत्रित करके आदि-पुरुष यहाँ सोते हैं। पैर का अँगूठा हाथ से पकड़ कर मुँह में पीते हैं।

तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि, गुण-त्रय-मयं च तत् ।

तं कल्प - वृक्षमित्याहुरपरे वेद-संज्ञकम् ॥

उस त्रिगुण-मय का मैं रूप कहता हूँ। कोई उसे 'कल्प-वृक्ष' कहते हैं, कोई 'वेद'।

प्रणवं केचिदित्याहुर्माया - वृक्षमथापरे ।

प्रधानं पुरुषं केचित्, केचित् संसृति-कारणम् ॥

कोई 'प्रणव', कोई 'माया-वृक्ष', कोई 'प्रधान पुरुष' और कोई 'सृष्टि' का कारण कहते हैं।

विश्वेश्वरस्त्रिशुलाग्रे, काशीमारोप्य सत्वरम् ।

तिष्ठति प्रलये यस्य, मुले नृत्यन् प्रहर्षितः ॥

तस्मिन् काले बटे सर्वे, प्रार्थयन्तीममक्षयम् ।

पूजयन्ति नमस्यन्ति, गूणन्ति च पुरः स्थिताः ॥

त्रिशूल के अग्र-भाग में काशी को उठाकर विश्वनाथ प्रसन्न होकर, प्रलय-काल में जिसके मूल में रहते हैं, उस समय सभी सामने खड़े होकर 'वट' की प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं और नमस्कार करते हैं।

वटस्य प्रणिपातेन, सर्व-देव-प्रियो भवेत् ।

वटस्य ध्यान-मात्रेण, सर्वे ध्याता न संशयः ॥

‘वट’ को प्रणाम करने से मनुष्य सब देवताओं का प्रिय हो जाता है । ‘वट’ के ध्यान करने से सभी का ध्यान हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं ।

नमो भेषज-रूपाय, मायायाः पतये नमः ।

माधवस्य जल-क्रीडा, लोल-पल्लव-कारिणे ॥

भेषज-स्वरूप माया के पति को नमस्कार । चञ्चल पत्र के द्वारा माधव को जल-क्रीड़ा करानेवाले को नमस्कार ।

प्रपञ्च-बीज - भूताय, विचित्र-फलदाय च ।

नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥

संसार के मूल स्वरूप और विचित्र फल देनेवाले आपको बारम्बार नमस्कार ।

एवं यः स्तौति तं भक्त्या, नारी वा पुरुषोऽपि वा ।

भुक्त्वेह विपुलान् भोगान्, परम-सुखमश्नुते ॥

इस प्रकार भक्ति-पूर्वक जो स्तुति करता है, वह स्त्री हो या पुरुष—विपुल भोगों को भोग कर पर-लोक में सुख पाता है ।

आयुरारोग्य-सौभाग्य-सम्पत्-सन्तति-काम्यया ।

या नारी वट-सावित्री-व्रतमन्न करिष्यति ॥

आयु, आरोग्य, सौभाग्य, सम्पत्ति और सन्तति के लिए जो स्त्री ‘यहाँ पर ‘वट-सावित्री व्रत’ करेगी—

गृहीत तत्र सिद्धयर्थमुद्यापनमथापि वा ।

यथा-शक्ति यथा-वित्तं, सा तत्-फलमवाप्स्यति ॥

अथवा उसकी सिद्धि के लिए यथा-शक्ति यथोपचारों से उद्यापन करेगी, वह उस व्रत का फल प्राप्त करेगी ।

एवं वो बट-माहात्म्यं, मया प्रोक्तं मुनीश्वराः !

हरिणा सनकादिभ्यः, प्रोक्तं सर्व-फल-प्रदम् ॥

हे मुनीश्वरो ! मैंने 'वट' का यह माहात्म्य आप लोगों से कहा, जो विष्णु ने सनकादि से कहा था । यह माहात्म्य सब काम्य फलों का देनेवाला है ।

अक्षय - वट - माहात्म्यं, बहु-वर्ष-शतैरपि ।

वक्तुं को वा समर्थोऽस्ति, मयोक्तं कृपया गुरोः ॥

'अक्षय-वट' का माहात्म्य सैकड़ों वर्षों में भी कोई नहीं कह सकता । मैंने तो गुरु की कृपा से कहा है ।



माहात्म्य-निदर्शन

इस प्रकार जन-जीवन में 'अक्षय-वट' का गौरव-पूर्ण स्थान है। इसकी महत्ता, पवित्रता एवं गौरव-गरिमा पर हिन्दुओं को गर्व है। 'वट-वृक्ष' की कृपा से मानव का केवल कल्याण ही नहीं होता, वरन् उसे इस लोक में सब सुख-सम्पन्न होते हुए मोक्ष की प्राप्ति होती है। अकाम अथवा सकाम - भावना से भी 'अक्षय-वट' के पूजन से मानव-समुदाय परम गति को प्राप्त करता है। इसी 'अक्षय-वट' के कारण तीर्थ-राज प्रयाग जगदीश्वर का आवास-स्थान होता हुआ स्वर्गादिपि श्रेष्ठ कहा जाता है। सन्तप्त मानव ने अपनी अन्तिम अभिलाषा यही व्यक्त की थी कि 'हे भगवन् ! किसी भी अवस्था में मुझे वट-वलम्बी प्रयाग में वास करने का अवसर मिले।'

स्वर्ग एवं ईप्सित फल की प्राप्ति के लिए जनता पुरातन काल से 'अक्षय-वट' की अभ्यर्चना एवं प्रार्थना करती चली आ रही है। इसके ही 'विकिर क्षेत्र' में श्राद्ध करने से पितरों को अवश्यमेव स्वर्ग-प्राप्ति हो जाती है। प्रयाग में स्नान के समय जनता 'वन्देऽक्षय-वटं श्रेष्ठं, प्रयागं तीर्थ-नायकम्' के रूप में प्रणाम करती है। धर्म के साक्षात् अवतार युधिष्ठिर ने इस वट-वृक्ष के दर्शन से सुख एवं शान्ति प्राप्त की थी। इस प्रकार हमारे आधुनिक एवं प्राचीन जीवन के उत्थान में 'अक्षय-वट' ने अपूर्व योग-दान दिया है।

अक्षय-वट का शास्त्रीय महत्त्व : ३६

‘अक्षय-वट’ की रक्षा शूल-पाणि महेश्वर किया करते हैं। उस स्थान का भारतीय संस्कृति में कितना महत्त्व-पूर्ण स्थान होगा, जहाँ संसार के जल-मय होने पर, स्थावर-जङ्गम के नष्ट हो जाने पर एवं स्थल के जल के रूप में परिणत हो जाने पर बाल-शरीर-धारी श्री हरि शयन करते हैं और ब्रह्मादिक उनका स्तवन करते हैं। प्रयाग के महत्त्व को बतलाते हुए हमारे महर्षियों ने तीर्थ-राज को स्वयं श्रेष्ठ बता कर उसके महत्त्व को और बढ़ाने के लिए ‘ततो अक्षय-वटान्वितः’ के रूप में उसकी महिमा का गान किया है। इससे ‘अक्षय-वट’ की गरिमा और भी बढ़ जाती है। ऊपर से यह भी कहा जाता है कि “माधव उतनी प्रसन्नता से वैकुण्ठ में नहीं रहते, जितनी प्रसन्नता से प्रयाग के ‘अक्षय-वट’ पर रहते हैं।”



